डॉ॰ बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य
(Assistant professor),
हिन्दी विभाग ,
डी.बी. कॉलेज जयनगर,
मधुबनी (बिहार)

अध्ययन सामग्री
स्नातक, प्रथम वर्ष,
राष्ट्रभाषा हिन्दी (अंक 50) के लिए।

'रश्मिरथी' की कथावस्तु

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य के एक प्रमुख स्तंभ एवं भारतीय राष्ट्रीय जागरण में अहम भूमिका निभाने वाले कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' की अत्यधिक लोकप्रिय तथा महत्त्वपूर्ण रचना 'रश्मिरथी' हिन्दी साहित्य का एक उत्कृष्ट खंडकाव्य है। महाकाव्य का आभास देने वाले इस खंडकाव्य की रचना कवि ने जाति और योग्यता की सामयिक एवं प्रासंगिक समस्या को ध्यान में रखकर की है।

इस काव्य के आरंभ में अत्यंत ओजस्वी शब्दों में कवि ने जाति की अपेक्षा गुण को वरीयता दी है। इसके बाद कथा का आरंभ होता है। जब कौरव एवं पांडव छात्रावास्था में ही थे तो धनुर्विद्या की शिक्षा के लिए आचार्य द्रोण की नियुक्ति हुई थी। छात्रों की उपलब्धियों का सार्वजनिक प्रदर्शन कराया जाता था। एक दिन रंगभूमि में अर्जुन द्वारा अर्जित अपनी धनुर्विद्या के गुणों के प्रदर्शन के समय जब उसे सभी ओर से प्रशंसा प्राप्त हो रही थी, उस समय अर्जुन की श्रेष्ठता को स्वीकार न करते हुए कर्ण ने उसे द्वंदयुद्ध के लिए ललकारा। कुलगुरु कृपाचार्य ने कहा कि अर्जुन जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा? यदि कर्ण को अर्जुन से लड़ना ही हो तो पहले वह अपने कुल, गोत्र, जाति आदि का पता बताए। इस पर कर्ण का सिर झुक गया। कृपाचार्य के अनुसार राजपुत्र से लड़ने की शर्त थी कि उसे कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा राजा ही युद्ध के लिए चुनौती दे सकता है। कुंती भी उस रंगभूमि में उपस्थित थी। कवच-कुंडल के कारण उसने कर्ण को पहचान लिया था, परंतु जिस वजह से उसने उसे त्यागा था उसी भय के कारण इस समय भी उसका मुंह बंद रहा। इधर दुर्योधन को कर्ण में अर्जुन के योग्य प्रतिपक्षी योद्धा की छवि नजर आयी और उसने उसे अंग देश का राजा बना कर उसके माथे पर राजमुकुट रख दिया। इतना सब होते-होते संध्या होने को आ गयी थी, अतः सभा विसर्जित कर दी गयी क्योंकि सूर्यास्त के बाद युद्ध नहीं हो सकता था। द्रोणाचार्य ने अर्जुन को सावधान करते हुए आश्वासन दिया कि वे कर्ण को धनुर्विद्या की शिक्षा नहीं देंगे।

दूसरे सर्ग में में कर्ण द्वारा महेन्द्रगिरि पर ऋषि परशुराम से धनुर्विद्या प्राप्त करने की कथा है। उसी क्रम में विषकीट का दंश और कर्ण की सहनशीलता को देखकर परशुराम जी को कर्ण के शाप-शक्तिहीन

अब्राह्मण होने का निश्चय होता है। उसके लिए अत्यधिक ममता के बावजूद उन्होंने शाप से उसके द्वारा अर्जित सारी विद्या को निष्फल कर दिया। कर्ण निरुद्देश्य, लक्ष्यहीन, सर्वस्वहारा की तरह वहाँ से चल देता है।

तीसरे स्वर्ग में द्यूत-क्रीड़ा में हारे हुए पांडवों के बारह वर्षों के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास झेलने से संदर्भित कथा है। इतना सब होने के बावजूद जब बेईमान कौरवों ने अज्ञातवास से लौटे पांडवों को उनका हक देना स्वीकार नहीं किया तो दोनों के बीच समझौता करवाने हेतु स्वयं श्रीकृष्ण पांडवों का संदेश लेकर हस्तिनापुर आये। पांडवों का संदेश था कि -

"दो न्याय अगर तो आधा दो
पर उसमें भी यदि बाधा हो
तो दे दो केवल पाँच ग्राम
रखो अपनी धरती तमाम
हम वही खुशी से खाएँगे
परिजन पर असि न उठायेंगे।"

परंतु दुर्योधन उतना भर देकर भी समाज का आशीर्वाद न ले सका। उल्टे श्रीकृष्ण को बंदी बनाने का प्रयत्न किया। इससे क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया और कुपित होकर वहाँ से चल पड़े। रास्ते में विनम्र कर्ण से भेंट हुई। श्रीकृष्ण ने उसे सप्रेम अपने रथ पर बैठा कर उसके जन्म की सारी कहानी सुनाई और दुर्योधन को छोड़कर पांडवों के पक्ष में आ जाने का आग्रह किया। परंतु कर्ण ने बताया कि उसे सूर्य से अपने जन्म का सारा वृत्तांत मालूम है और वह किसी प्रकार विश्वासघात नहीं कर सकता है, क्योंकि दुर्योधन ने उसे बुरे समय में साथ दिया था। उसने उस समय कुंती के लिए सर्पिणी, विकराली आदि शब्दों का भी प्रयोग किया। यहाँ पर कर्ण यह प्रकट करता है कि युद्ध में पांडवों की विजय होगी। श्रीकृष्ण महाभारत का युद्ध प्रारंभ करवाने का आग्रह करता है ताकि युद्ध में अपने प्राण देकर वह दुर्योधन की मित्रता के भार से उऋण हो सके।

(शेषांश अगले व्याख्यान में)